ISSN Print: 2664-7699
ISSN Online: 2664-7702
Impact Factor: RJIF 8.00
IJHA 2023; 5(1): 10-12
www.humanitiesjournals.net
Received: 10-02-2023
Accepted: 15-03-2023

पंचम खण्डेलवाल
सहायक आचार्य (विद्या संबल),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
पंचम खण्डेलवाल
सहायक आचार्य (विद्या संबल),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

हाड़ौती की लोकचित्रकला के आयाम

पंचम खण्डेलवाल

DOI: https://doi.org/10.33545/26647699.2023.v5.i1a.38

सारांश
हाड़ौती के सांस्कृतिक परिवेश की युग–युगीन धारा देखने पर विदित होता है कि अनेक सांस्कृतिक समृद्धियों के बावजूद यहाँ का जन जीवन आज तक पिछड़ा हुआ है। सत्तर प्रतिशत जनता गाँव में रहती है। प्रत्येक ग्राम के मध्य भू–स्वामी कृषक का मकान होता है जो वहाँ के समाज की वर्ण–व्यवस्था की दृष्टि से उच्च वर्ग का प्रतिनिधि है। निचली जाति के लोग आज भी गांव की बाहरी सीमा पर अपने झोपड़ें में रहते है। भाषा एवं बोली के बारे में यहाँ पर एक लोकोक्ति अधिक चरितार्थ होती है। ''चार कोस पे बोली बदले, पाँच कोस पे पानी''। 'डॉ. ग्रियर्सन' ने भाषा के वर्गीकरण के अनुसार यहाँ की भाषा इण्डो यूरोपियन परिवार की इण्डो आर्यन शाखा के मध्य ग्रुप की ठहरती है। यहाँ पांच, छः बोली के स्वरूप पाए जाते हैं। इनमें मुख्य बोली राजस्थानी भाषा से प्रभावित है। हाड़ौती की एक विशिष्ट जीवनचर्या, जीवन दर्शन तथा लोक में प्रचलित धार्मिक, सामाजिक अवसरों पर लोक की मानसिकता से युक्त होकर स्त्री या पुरूषों के द्वारा सहज सुलभ साधनों से घर के आंगन, दीवारों, दरवाजों, शरीर के अंगो पर गोदना, मिट्टी सूखे रंग अबीर, गुलाल, हल्दी, रोली–चावल, आलता, कोयला, हिरमिच, खड़िया, पत्ती पुष्प रस आदि के अंगो से जो रूपायन हाड़ौती में किया जाता है। हाड़ौती की लोक चित्रकला के स्त्रोत धार्मिक आख्यान, लोक साहित्य, ऐतिहासिक ग्रंथ, प्राचीन खण्डहर प्राचीन वृत्तान्त और परम्परा रही है।

कूटशब्द : कोस, हिरमिच, मांडना, अटूट, सुखान्त, अद्वेतवाद, व्याधि, सापेक्ष

प्रस्तावना
सभ्यता एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लोक चित्रकला का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का। अनादिकाल से जब मानव जीवन में सांस्कृतिक उद्‌बोधन हुआ तब से लोकचित्रण उसकी सहचरी रही। लोक कलाएं मानव जीवन का अभिन्न अंग है तथा ग्रामीणों के आंतरिक सौंदर्य कलात्मक अभिव्यक्ति, लोकरंजता आदि की परिचायक हैं। इसके साथ ही ये कलाएँ उनके सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी विभिन्न परम्पराओं, विश्वासों, आस्थाओं की सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हाडौती अंचल मे पल्लवित हो रही लोककलाएं भूतकाल से वर्तमान तक इन्ही मान्यताओं की मंजिलें छूते हुए चली आई है। इस लोक कलाओं से नृत्य, संगीत गायन तथा भाँति–भाँति का अंग संचालन संपूर्ण समाज को देखने को मिलता है। वे संस्कार से संस्कृति, संस्कृति से आस्था, आस्था से लोक जीवन और लोक जीवन से लोक कला का स्वरूप ले लेती है।
हाड़ौती ग्राम्य अंचल के लोक साहित्य में लोक मानस के धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति हुई है तथा हाड़ौती का लोक मानस अपने भाग्य एवं कर्म पर अटूट विश्वास रखता है। लोक कथाओं का अंत सदैव सुखान्त होता है। इस सुखान्त भावों की अभिव्यक्ति लोक चित्रकला के विभिन्न आनुष्ठानिक, चित्रण में या तीज त्यौहार के निमित्ति चीती गयी चित्रकारियों में देखने को मिलती है। अनेकशः संघर्षो को पारकर सार्वजनिक मंगल कामना हाड़ौती की लोक चित्रकला में निहित है। इसके पीछे लोकमानस की धर्मबुद्धि ही रहती है। भारतीय अद्वैतवाद ने विश्वबन्धुत्व की भावना को जन्म दिया। यह भावना हाड़ौती ग्राम्य अंचल की लोक कथाओं एवं उन कथाओं को प्रतीक के माध्यम से चित्रित करने में यह तत्र सर्वत्र देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति में हाड़ौती अंचल में भी सदाचार, सत्य और अपने इष्टदेव, प्रकृति आदि सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति हाड़ौतीवासियों में प्रगाढ़ आस्था को जन्म दिया।
हाड़ौती अंचल की लोक चित्रकला में इन सांस्कृतिक मूल्यों का चित्रण देखा जा सकता है। जैसे तेजादशमी, जलझूलनी एकादशी, दहेलवाज का मेला, हरतालिका तीज एवं सावन की तीज पर राजस्थानी स्त्रियां दूर देश वाले अपने पति को संदेश भेजने लगती हैं।

''अजी देसां पीव बसैरी तीजो तठा त्यौहार मरवण कर सौ एकली''।
''झरमर मेहा बरसे, आंत्रण काचे कीच, नदिया नाला लांघस्या आण मनास्यां तीज''।

चित्रकारिता के पीछे सांस्कृतिक मूल्य अन्तर्निहित रहते है। प्रधान देवताओं के लोकचित्र जो पूजाभाव से चित्रित किये जाते है। उनमें चंद्र, सूर्य, स्वास्तिक, हीड़, पान, सुपारी, लहारिया, दीपक, फूल, पंखी के नमूने, गलीचा, मोर–मोरनी, गमले, कलियां, बन्दनवार, प्राकृतिक उपादानों के चित्रण एवं चौक चित्र आदि सभी लोकरंजन में देखे जा सकते हैं। हाड़ौती ग्राम्य अंचल की लोक चित्रकला का उद्देश्य भारतीय मनीषियों के अनुसार व्यक्ति को लौकिक आनंद एवं पारलौकिक कल्याण के साथ ही समाज का उत्थान एवं लोकमंगल है। हाड़ौती अंचल भी मानव की लोकचित्रकला के प्रति जिज्ञासा और उसकी संपूर्ण संरचना यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की केन्द्र बिन्दु रही है। जिसका ज्वलंत उदाहरण यहाँ के पुरा ऐतिहासिक स्थलों, मृदभाण्डों लोकजीवन एवं लोकरंजन में देखने को मिलता है। हाड़ौती अंचल में नमाना, गरड़दा, गोलपुर, खटकड़, रामेश्वरम्, अलनिया इत्यादि शैलाश्रयों में आदिमानव द्वारा उकेरे गए रेखांकन और मृदभाण्डों की कलात्मक उकेरियाँ इस अंचल के प्रारंभिक लोकचित्रण परम्परा को उद्घाटित करती है। हाड़ौती ग्राम्य अंचल में भित्ति एवं भूमिलोक अलंकरण, मांडणें, रंगोली, सांझी, घर की दीवारों एवं खंभों पर अल्पनाएं हीड़, बिंदौरी, स्वांग, लीला न्हाण, पर्वों एवं उत्सवों पर खेल–तमाशा इत्यादि यहाँ की लोक चित्रकला की विभिन्न विधाएँ है। यहाँ की हाड़ावला उपत्यका के पर्वतश्रेणियों में भी आदिमानव के कार्यों आमोद–प्रमोद एवं आखेट की क्रियाओं को मूलरूप देते हुए गैंडे, हाथियों के झुंड, सांभर, चीतल, हिरण, नीलगाय, मोर तथा अन्य पशु–पक्षियों के आखेट दृश्य देखने को मिलते है।

हाड़ौती ग्राम्य अंचल की लोक चित्रकला में सामाजिक जीवन का सहज और स्वाभाविक चित्रण बहुलता से देखने को मिलता है। यहाँ मानव जीवन के मुख्य सोलह संस्कारों का विधान प्राचीन काल से चला आ रहा है। संस्कारों से संबंधित लोक चित्रकला, लोकाचार का चित्रण तथा अनुष्ठानों के समय अनेक प्रकार के चरूये, सतिये, चौक पूरना, स्वास्तिक आदि की चित्रण कला देखी जा सकती हैं। घरों में माण्डणे माण्डणा, राखी पर श्रवण बनाना, शुभ अवसरों पर दीवारों पर स्वास्तिक बनाना, शादी विवाह के मौके पर दीवारों पर हाथी–घोड़े, त्यौहारों के अवसर पर महिलाओं द्वारा हाथों पर मेंहदी लगाना आदि भी प्रचलित हैं। यहाँ पर मुस्लिम, जैन, सिक्ख, ईसाई आदि सभी सम्प्रदाय के लोग रहते है किन्तु यहाँ का बहुसंख्यक समाज लगभग 87 प्रतिशत हिन्दु है। चमार, कुम्हार, तेली, गुर्जर, मेघवाल, मीणा, ब्राह्मण, कायस्थ, अहीर, धाकड़, सिंधी, बोहरा, कंजर, माली, दरोगा, दर्जी, छीपा, महाजन, खाती, राजपूत भील, गिरासिया व जैन आदि प्रमुख हैं। यहाँ पर एक विशेष प्रकार की जाति मोग्या सास्यिां पाई जाती है।

''ओका–नौका'' या ''ओका–गुणा'' या ''ओका–बावसी'' आदि नामों से संबोधित की जाने वाली आकृतियाँ बनाई जाती है। जो अधिकतर चेचक के उपचार के रूप में बनाई जाती है। ये आकृतियाँ लेटी हुई, खड़ी हुई या उल्टे सिर की होती है इन जन जातियों का विश्वास होता है कि उल्टे सिर की आकृति बनाने से व्याधि स्वयं कष्ट पाकर रोगी को रोग से मुक्त करके चली जायेगी।

यहाँ का जन–जीवन त्यौहारों, उत्सवों, पर्वों के आयोजन में लगभग सामान्य राजधानी और हाड़ौती का मेल होता है। सभी सम्प्रदायों के त्यौहार इस क्षेत्र में मनाये जाते है। यह त्यौहार सद्भावना के संवाहक होता है। किन्तु गाँव में रूढ़ हो चुकी है अछूती भावना पर इनका प्रभाव नाम मात्र का ही होता है। जन–जीवन में विश्वास की कई धारणाऐं अंधविश्वास के रूप में प्रचलित है। जैसे भूत–प्रेत लोक देवी–देवता आदि। समाज में प्रायः एक पत्नी प्रथा प्रचलित है, लेकिन कुछ वर्गों में बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित है। इस क्षेत्र में दो जातियां ऐसी हैं, जिनमें पत्नी गिरवी रखने जैसे आश्चर्यजनक परम्पराएं व प्रथाएं पाई जाती है। यह जातियां साठिया व मोग्यां हैं।

यहां नाता एवं पुनर्विवाह परम्पराएं भी प्रचलित हैं। आधुनिकता की चमक में कइ धार्मिक, आध्यात्मिक परम्पराएं दम तोड़ चुकी हैं। यहां प्रायः संयुक्त परिवार आदर्श माना जाता है।

लोक चित्रकला का स्वरूप धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाजों, अतिथि आगमन, धार्मिक पूजापाठ, अनुष्ठान, मनोरंजन के साधनों, जन्म विवाह एवं मृत्यु आदि संस्कारों तथा फसल के उत्सवों आदि में विकसित होता दिखाई देता है। लोक चित्रकला की सौन्दर्यात्मक अनुभूति, चेष्टायें, भावनाएं, मनोवृत्तियाँ लोक जीवन के साथ घुली–मिली रहती है। यह कला बिना किसी प्रलोभन, आश्रय, संकेत अथवा शिक्षा से निरंतर आगे बढ़ती रहती है। जहाँ एक ओर इसमें बाल सूलभ सहजता है, तो वहीं दूसरी ओर आदिम समाज की सामाजिकता है। इसका सर्वांगीण विकास हमें घरेलू जीवन में ही मिल जाता है। लोकमानस के हृदय की सरलता व सुबोधता लोकचित्रकला के प्राण हैं। लोकचित्रकला के सौंदर्य विधान को समाज के बहुसंख्यक लोग सहज श्वांस की तरह ही स्वीकारते चलते हैं। लोक चित्रकला प्रमुख रूप से स्थानीय ही होती है। स्थानीय परम्पराओं की दृढ़ता के कारण इस कला में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री की प्रमुखतया स्थानीय व आंचलिक ही होती है।

ये लोक कलाकृतियाँ लोक सापेक्ष होती है। उसमें निहित भावनांए किसी एक व्यक्ति से संबंधित न होकर समस्त समाज से संबंधित होती है। लोक कलाकार ऐसे वातावरण में कार्य करता है, जहाँ उसकी परम्पराओं का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं होता है। इस कला में परिप्रेक्ष्य अथवा स्थानगत दूरी को कोई विचार नहीं किया जाता और ना ही संयोजन का कोई विशेष निश्चित पद्धति होती है। लोक कलाओं के अभिप्राय बार–बार प्रयोग में लाये जाते हैं, तथापि ये कलाएं मात्र अनुकरण नहीं होती, अपितु इसमें मौलिक शैलियाँ भी विकास पाती है। जहाँ मौलिकता के साथ–साथ समाज में प्रचलित धारणाओं का भी ध्यान रखा जाता है। इसी प्रकार लोक चित्रकला किसी माध्यम विशेष में बंधी नही रहती और लोक कलाकार आकृति माध्यम तथा तकनीक की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र होता है।

समाज में लोककला को लोकगीतों के माध्यम से भी बहुत ही सरलतापूर्वक समझा जा सकता है, क्योंकि लोकगीतों में लोक विश्वास, रीतिरिवाज एवं परम्पराओं के बहुत ही स्पष्ट विवरण प्राप्त होते है। हाड़ौती में लोक चित्रकला को जीवित रखने का श्रेय यहाँ के नारी समाज को जाता है, जो व्रत, उपवास, त्यौहारों एवं धार्मिक अनुष्ठानों पर अपने घर–परिवार के लिए अनेक मंगल कामनाएं करती हैं। इन सभी मांगलिक अवसरों पर अनेक कलाएं विकसित होती चली गई हैं। इन्होंने धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को बनाये रखते हुए 'भूमि अलंकरण' के रूप में हमें सुन्दर लोक कलाकृतियाँ प्रदान की हैं। यद्यपि विभिन्न प्रांतो में लोकचित्रकला के इन भूमिचित्रों को अनेक नामों से जाना जाता है, लेकिन उनके मूल में जो आल्हाद तथा आत्मीयता है वह सर्वत्र एक जैसे रूप में विद्यमान हैं।

संदर्भ

1. Mandana: The folk designs of Rajasthan - Designs by V.N. Saxena & Text by Neelima Vashishtha.
2. Art of Rajasthan (Heena & Floor decorations) - Sundeep Prakashan, Delhi; c1979

3. Folk ways in Rajasthan, The Folklorists - U.B. Mathur Jaipur; c1986
4. टी.एन. चतुर्वेदी, राजस्थान वैभव, भारतीय संस्कृति एवं संवर्धन परिषद्, दिल्ली
5. गुलाब कोठारी, राजस्थान की ग्रामीण कलायें एवं कलाकार, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 1997
6. एम. भानावत, राजस्थान के मांडने, उदयपुर, भारतीय लोक कला मंडल, 1978
7. डॉ. गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, जयपुर, 1980